दलित कहानियों में संवेदनात्मक पक्ष, परिवर्तन और दिशा

डॉ. राजकुमारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (हिन्दी)
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)

मनुष्य और साहित्य की किसी भी विधा का मूलभूत आधार होती हैं, अपनी ज्ञानेंद्रियों के द्वारा ही मनुष्य जो सुखानुभूति और दुखानाभूति करता है। उसकी अभिव्यक्ति ही वह रचना में करता रहा है। हिन्दी साहित्य में कथाओं का वृहद इतिहास रहा है, कभी कथाएं मौखिक तो कभी लिखित रूप में रही हैं। पाश्चत्य देशों से प्रारंभ हुई इस विधा ने हिन्दी साहित्य को अत्यंत प्रभावित किया और अंग्रेज़ी कथाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव भी हिन्दी कथासाहित्य पर सष्ट रूप में परिलक्षित होता है। आधुनिक युग संवेदना में कहानी विधा का हिन्दी साहित्य में आगमन हो चुका था। भारतेंदु युग के अंतिम दशक में इस विधा की उत्पत्ति हो चुकी थी। प्रारंभिक कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और समाज सुधार का स्वर दृष्टव्य होता है।

"आज की हिन्दी कहानी गतिशील है, आधुनिकता की चुनौती को स्वीकार कर रही है और आधुनिकता एक प्रक्रिया है जिसे नई कहानी ने मूल्य में परिणित कर इसे रूढ़ बनाया है। इसीलिए नई कहानी अपने नयेपन को छोड़कर नए नाम धारण करने को विवश है।"[1]

नयापन और नवजागरण दलित साहित्य में भी बखूबी उभरा है, कविता, उपन्यास और कहानी, नाटक आदि विधाओं के रूप में इसे देखा जाता रहा है। इसी परम्परा में कथा के क्षेत्र में एक ख्याति प्राप्त नाम है रतनकुमार सांभरिया।

साहित्यकार सांभरिया दलित साहित्य लेखन के अप्रतिम साहित्यकार हैं। उनकी कहानियों की विषयवस्तु में सामाजिक शोषित व्यक्तियों के संवेदनात्मक पहलुओं के साथ अस्मिताबोध, चेतना और आत्मचिन्तन की छवि प्रत्यक्ष नज़र आती है। वर्तमान युग में हाशिए पर खड़े समुदाय और जातियों के अविकसित समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति कथाओं में हुई है। एक ओर जहां बंजारे, कंजर, सपेरे, जैसी समस्त कहानियां खानाबदोश जीवन जीने वाली जातियों के खुरदरे जीवन के कटुतापूर्ण सत्यों का उदघाटन करती हैं तो वहीं दसरी ओर आंचलिक जीवन में सामान्य श्रमिक, लघु उद्योग से जुड़े लोगों, जातीय पेशे से जुड़े समाज, विधवा जीवन, स्त्री जीवन, विदर पुरुष और वृद्धावस्था में कठिन परिस्थितियों में गुजरती जिंदगी और उनके साथ हो रहे मानवीय व्यहार के सत्य को चित्रित करती कहानियां हैं, संवेदना की आत्मिक अभिव्यक्ति उनकी कहानियों में हुई है। उनकी कथाओं में सशक्त बात ये भी है कि एक ओर यथास्थिति के अनुकूल नारी पात्र अपने निर्णय स्वयं लेते हैं, तो वहीं दसरी ओर अंतर्विरोध की स्थिति से निपटना भी भली- भांति जानते हैं। विपरीत परिस्थियों से जूझते जरूर हैं किंतु निराशावाद का दामन थामने के लिए विवश नहीं होते। जैसे - जैसे कथा आगे बढ़ती है रोचक होती चली जाती है। पाठकों को मुग्ध करने की सारी गुणवत्ता कथाओं में निहित है और वही उनके कथानक को सुदृढ़ बनाती है। संघर्षरत पात्रों को निर्मिति परिवेश की जटिलताओं को साहसपूर्वक पार करती है। आंचलिक क्षेत्र में जातीयता की जटिलता, शोषण की पराकाष्ठा, अपमान की लीक , संघर्ष का संकल्प, जन चेतना, खानाबदोश जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति को बड़ी ईमानदारी के साथ कथाकार ने शब्दबद्ध किया गया है।

सांभरिया की कहानियों में भी नारी शोषण, भारतीय जन जीवन, वर्ग संघर्ष, मानवीय मूल्यों की स्थापना, मानवीय संबंधों में उभरता द्वंद, बहुत गहन चिंतन हृदय को गहराई से प्रभावित करता है। कहानियों के कथ्यों में चेतनता के स्वर उभरते हैं। वृद्ध सेवक जी अपने घर को वृद्धों के लिए वृद्धाश्रम बना देते हैं, ये उनकी जिंदगी से मिले सबक से वो सीखते हैं कि बुजुर्ग होने पर एक सहारे की अवश्यकता होती है। ' आश्रय ' कहानी का कथानक इसी मूल भाव को रुपायित करता है। सेवक का बेटा जो शहर में निवास करता है वो पिता के उस रहन घर का भी सौदा करना चाहते हैं जिसमें सेवक जी दीन दुखी, रोगग्रस्त वृद्ध व्यक्तियों को आश्रय दिए हुए हैं जिन्हें उनके परिवार त्याग चुके हैं, रिटायरमेंट और पत्नी की मृत्यु के पश्चात वे धन और मन दोनों से ही बेसहारा लोगों के जीवन का संबल बने उदारवादी भावना से ओतप्रोत सेवक अपने बेटे परमेश्वर का कंधा थपका कर कहते हैं - "परमेश्वर जी, रिटारमेंट के बाद मुझे लगा कि बहु बेटे पर आश्रित होने की बजाय मेरा घर और धन बुजुर्गों का आश्रय बन जाए। आप जब भी आश्रय आएं, बेसहारा को जरूर लाएं।"[2]

पिता की गीली आंखों और इन शब्दों ने अपनी अंतर्वेदना के बहाव को बहा दिया। अप्रत्यक्ष रुप में उस मकान को न बेचने की घोषणा भी कर चुके थे। उनकी कहानियां नए सोपानों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती हैं नारी पात्र जीवन की विभिन्न चुनौतियों को स्वीकार करते हुए आजीवन संघर्षशील बने रहते हैं। अस्मिता की धुरी पर घुमती स्त्रियां बहुयामी व्यक्तित्व में दिखाई पड़ती हैं।

भारतीय कृषक वर्ग, गरीब किसानों की पीड़ा को दर्शाती कहानी ' खेत ' जिसके माध्यम से कथाकार अपनी ज़मीन खोने की टीस लिए हैं, सड़क के किनारे स्थित ज़मीन हो या सड़क से दूर किसान का लगाव उससे मां सरीखा होता है, उसी के सहारे से अपने परिवार का लालन-पालन करते हैं। ज़मीन उनकी जिंदगी होती है। औद्योगिकीकरण के कारण

'पूंजीपति वर्ग की पैनी नज़र उसी ज़मीन पर गड़ी रहती है जहां वे अपने लाभ हेतु कारखाने, मॉल निर्मित कर एक उद्योगिक नगर बनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को अधिक मज़बूत कर सकें, किंतु इसके परिणामस्वरूप आर्थिक रूप से कमज़ोर किसान बलि का बकरा बन जाता है। हथौड़ा ' कहानी "मूर्तिकार पत्थर पर बैठकर उसे मूर्ति बनाता है। मंदिर में जब मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा हो जाती है, वह उसे छू तक नहीं पाता है। मजूर की नियति। अपना श्रम स्वेद दफन कर जिस मकान का निर्माण करता है, नांगल मंगल के बाद उसी में जाते पीछे हटता है।"[3]

समाज में एक ये भी परंपरा रही कि खेत मजदूरी में जाने वाले निम्न जाति के लोग जिनके खेतों में काम करते उन्हें अपना जमींदार और वे उन्हें अपने चमार, नाई होने का हक जमाते थे वे उनके अतिरिक्त किसी अन्य बड़े परिवारों का काम नहीं कर सकते थे। वैसा ही एक उदाहरण हमें ' चमरवा ' कहानी में प्राप्त होता है चमारवा एक ऐसी जाति है जो पूर्वी और हरियाणा के पश्चिमी छोर पर रहती है, चमरवा एक बाभन जाति है जो चमारों के कर्मकांडों को पूर्ण कराते रहे हैं और अपना गुजर बसर करते हैं किंतु उसकी पहचान चमारों के बीच ब्राह्मण और ब्राह्मणों के मध्य चमार की है। प्रस्तुत कहानी में दरपन ब्राह्मण का पुत्र अपने दोस्त के मशवरे पर नौकरी के लिए जाति प्रमाण पत्र बनवाता है दरपण को इस प्रमाण पत्र को देखकर क्षोभ और झल्लाहट से भरकर क्रोधित हो उठता है और जातीय घृणा के कारण बौखला उठता है - " करण के हाथों ' चमार' का प्रमाण पत्र देखकर दरपन की आँखें मशाल बन गई। बाज़ परिंदे भी इतनी तेज़ नज़र नहीं खोजता होगा, जितना दरपन ने करण के हाथ पर झपटा मारा, प्रमाण पत्र फाड़ कर चिंदियां की और चूल्हे की जलती आग में भाड़ में भूसे की तरह झोंक दी, चमार बनने चला बेवकूफ।"[4] रस्सी जल गई पर बल नहीं गया। जातीय दंभ भरने वाले दरपन का पेट हालांकि चमारों के कर्मकांडो से चलता है उनका दिया खाते हैं , लेकिन जाति प्रमाण पत्र को देखकर उनके अन्दर निम्न जाति के प्रति घृणा की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। मृत्यु के वक्त अछूतपन की भावना भी सपष्ट दिखाई पड़ती है।

कहानीकार अपनी कहानियों में सामंतवाद से टकराते सजीव पात्रों का भी चित्रण करते हैं और निम्न जातियों में सामाजिक चेतना का विकास भी करते हैं। उन्होंने गैर दलित समाज के व्यवहार को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। अत्याधिक लोग जातीय अभिमान में इंसानियत को भुला दिया गया है।'बात ' जैसी कहानी में विधवा सुरती मर्द की तरह अपनी दी गई ज़बान को पूरा करती है और अपने बेटे की पढ़ाई के साथ - साथ अपनी इज्ज़त की रक्षा भी कर लेती है, इससे ये सिद्ध होता है कि ज़बान का पक्का होने में कहीं भी लिंग का कोई महत्व नहीं होता। वह स्त्री -पुरुष कोई भी हो सकता है। गरीब की भी इज्ज़त आबरू होती है तथा वह मेहनतकश भी है, यही कारण है कि सुरती अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रख पाती है। असल में वह भारत की हर श्रमिक स्त्री के स्वाभिमान का प्रतिनिधित्व करती है।

' काल ' कहानी भारतीय गरीब किसान की व्यथित कथा है जिसमें सूरदास बैल को भूख प्यास से राहत दिलाने के लिए खूंटे से खोलकर न चाहते हुए भी आज़ाद कर देता है ताकि वह मर न जाए, किंतु कुएं के निकट स्थित सूरदास बैल की मौत अकाल के कारण भूख प्यास से हो ही जाती है। जो मनुष्य और जानवर दोनों की विवशता और मौत का परिदृश्य दिखाती है।

कहानीकार अपनी कथाओं के माध्यम से भारतीय आंचलिक, शहरी क्षेत्रों के समाज में अपनी मज़बूत जड़े जमा चुकी विद्रूपताओं, पिछड़ेपन की जटिलताओं को चित्रित करते हैं। जनजातियों की दशा, सामंती मानसिकता, अभावग्रस्त जीवन, अकाल के समय की त्रासदी, भ्रष्टाचार की दिन ब दिन बढ़ती स्थिति ग्रामीण और देश की राजनीतिक स्थिति , जीवन में तीव्रता से हो रहे परिवर्तन आदि विभिन्न पहलुओं को जीवंत वातावरण के साथ प्रस्तुत करते हैं। स्त्रियों में अपनी अस्मिता को लेकर संजीदापन, अपने अपमान के प्रति प्रतिरोध, स्वर मुखरित करने की हिम्मत बा- कमाल है। शोषित वर्ग में चेतना, मनोवैज्ञानिक बदलाव, उनकी सक्रिय भूमिका को उभारते हैं। सभी कथाएं कालक्रमानुसार आए परिवर्तन का सार्थक निरूपण हैं।कथ्य में नवीनीकरण मिलता है,भाषा में ठेठ खड़ी बोली, राजस्थानी के शब्द प्रयोग हुए हैं,

"जीवन पचासेक के नीडे था।"[5]

खाट, गुदड़गाबा, चौसड़, आदि शब्द

गुण, शब्द शक्ति, लोकोक्ति, मुहावरे सभी उनके लेखन के मज़बूत पक्ष हैं। वर्णनात्मकता, प्रवहमयता, बिंब, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता ,कलात्मकता कथा उद्देश्य, शिल्प को विशिष्टता प्रदान करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनकी कहानियों में आंचलिक मिट्टी की गंध समाई है, संवेदना पक्ष जनमानस के भावों का आदान-प्रदान करने में सफ़ल है। उनकी राजस्थानी, मेवाती मिश्रित भाषा उनके कथा संसार को सजीव बनाती है। सभी कहानियां सुन्दर सौष्ठव लिए सफ़ल कहानियां हैं।

'पाठशाला' युवा कथाकार सुनील पंवार की वर्ष 2018 में लिखित कहानी है। कहानी का परिवेश राजस्थान का क्षेत्र है। लेखक ने जहां एक ओर सामाजिक कुरीतियों और रीति-रिवाजों को दृष्टिगत कराया है, वहीं दूसरी ओर समाज के परिवर्तित स्वरूप व दलित चेतना को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कहानी 'पाठशाला' में नयापन ये है कि इसमें समयाएं एवं समाधान दोनों ही मौजूद हैं। शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन होंगे ये सुनिश्चित किया गया है। शिक्षा से दृष्टिकोण बदलेंगे और फिर नवजागरण से देश बदलेगा; यही दशा और दिशा कहानी की विषयवस्तु है। कहानी के मुख्य पात्र 'सुखिया' के द्वारा बाल मन की जिज्ञासाओं ने प्रश्न को जन्म दिया और तर्क ने एक दिशा। पाठशाला में जाते समय बालक सुखिया की परेशानी, मन की उलझन, पाठशाला जाने से बचने की तरकीबें, कथा को रोचक बनाती हैं। घर से पाठशाला तक

पहुंचने से पूर्व मध्य मार्ग में कहानीकार ने कथा के मूल पात्र सुखिया की बौद्धिक क्षमता, पाठशाला न जाने के भिन्न-भिन्न बहाने, उसकी जिज्ञासा से उपजी तर्कशील बुद्धि, बाई में बापू को समझाने की क्षमता की पहचान व हाज़िरज़वाबी का बेजोड़ चित्रण किया है। उसकी शिक्षा से कहीं अधिक गृहकार्यों में रुचि, बाई को प्रसन्न करने और रीति-रिवाज पर प्रश्न खड़े करने की अद्भुत शक्ति को कथाकार ने सूझबूझ के साथ लिखा है। बाई स्कूल नहीं जाती वह जानता है, बाई सारा दिन काम में व्यस्त रहती है इसलिए वह उनके मर्म को पकड़ कर उनकी फिक्र में घर के काम में हाथ बटाने की तरकीब लड़ाते हुए फिक्रमंद होने का नाटक करता है। तब बाई सुखिया की चालाकी को पहचानते हुए कहती है- "तू मेरी फिक्र न कर सुखिया, मेरा क्या है मैं तो पराया धन हूं, बापू मेरा ब्याह कर देगा, तो मैं चली जाऊंगी।"[6]

बाल मन चिंताग्रस्त होकर एक और प्रश्न कर बैठता है-

"तुम कहां चली जाओगी बाई?" सुखिया ने बड़े आश्चर्य से पूछा।

"अपने घर... और कहां?" बाई ने उत्तर दिया। "तुम्हारा घर? वह कहां है बाई?" सुखिया ने कौतूहल से पूछा।

"म्हारे सासरे में।" बाई ने हल्की सी हँसी के साथ ज़वाब दिया।

"तो क्या बापू का घर तुम्हारा नहीं है?"[7]

"नहीं!" "ये पराया धन क्या होता है?"

"बेटी पराई होती है। वो ब्याह के बाद दूसरे घर चली जाती है, जैसे मां नानी का घर छोड़कर हमारे घर आई।"

"बापू मेरा ब्याह कर देगा तो क्या मैं भी चला जाऊंगा?" सुखिया के मासूम सवाल में बड़ा आश्चर्य था एवं स्त्री मन की दृढ़ता और स्वीकार्यता भी। वह खुद को पराया मान चुकी है। यह बात सामाजिक परंपरा ने उसे सीखा दी है। "हा हा हा! बावले! छोरे थोड़े ही जाते हैं, बेटियां होती हैं पराई।"[8]बाई उसे समझाती है। परम्पराओं ने दर्शाया है कि स्त्री धन है, संपत्ति है। वह मनुष्य नहीं बल्कि अपनी इच्छा एवं अधिकार से वंचित एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी जाने वाली वस्तु मात्र है। वह केवल पुरुष की सत्ता की वाहक, इससे अधिक कुछ नहीं। दोनों बहन-भाइयों के बीच बेहद रोचक संवाद शैली है, जो पाठकों में रुचि पैदा करने के साथ ही भेदीय नीतियों का भी खुलासा करती है। "बाई। तुम बापू को समझाती क्यों नहीं? मैं पढ़-लिखकर क्या करूंगा?" सुखिया ने एकाएक बाई से पूछा- "तू अनपढ़ रहकर भी क्या करेगा?" बाई ने सवाल का ज़वाब सवाल से दिया। "मैं खेत में बापू की मदद करूंगा। तुम्हारी काम में भी मदद करूंगा और मां का भी हाथ बटांऊंगा।" उसने चतुराई से ज़वाब दिया।[9] "बाई...! अगर मैं रोज पाठशाला जाऊंगा, तो तुम्हारे साथ पानी लेने कौन जाएगा? बापू की रोटी देने खेत में कौन जाएगा? तुम बिल्कुल अकेली हो जाओगी बाई।" सुखिया ने बाई को काम का प्रलोभन दिया ताकि बाई अपना इरादा बदल दे और उसे पाठशाला के झमेले से मुक्ति मिल जाए। वह बातें बनाने में तो बहुत माहिर था, किंतु आज बाई के सामने दाल गलती नज़र नहीं आ रही थी। बाई निरक्षर होने के बावजूद भी शिक्षा के महत्व को समझती है यही मूल कारण है कि वह सुखिया का दाखिला करवाने पाठशाला जाती है।

सुखिया की मां बाई ही थी ये तो कहानीकार ने लिखा लेकिन क्यों थी ? ये सपष्टिकरण पूरी कहानी में कहीं भी नहीं लिखा गया। मां जीवित थी या नहीं थी? कामकाज से घर से बाहर रहती थी? इसलिए वह बड़ी बहन होने के नाते देखभाल करती थी? या बीमार थी? इस बात का कोई भी संकेत कथा में नहीं मिलता। बाई जो की लड़की है और निम्न वर्ग से संबंध रखती है, पराया धन भी है शायद यही कारण है कि वह पाठशाला नहीं गई या उसे पाठशाला नहीं भेजा गया। कहानी का प्रथम भाग यही है।

दूसरे भाग में पाठशाला के बाह्य रूप को चित्रित किया गया है। गांव देहात की कच्ची मिट्टी की दीवार वाली लोहे की सलाखों वाला गेट, सफेदी से अंदर की लीपी-पुती दिवारे, पेड़ों के नीचे लगी कक्षाएं, पानी के मटकों की हालत, वातावरण की वास्तविकता और सरकारी स्कूलों की जर्जर हालत को बयान करती है। सुखिया की शरारतों और बौद्धिक शक्ति से गुरू जी भी परिचित हैं, किंतु सामाजिक बाध्यताओं के आगे वे भी बेबस हैं। यही कारण है कि वे सुखिया को पढ़ाने को राज़ी तो हुए परन्तु शर्त पर कि टाट और पानी ख़ुद का होगा। क्यों कि वो पढ़े लिखे तो हैं किंतु सामाजिक परंपराओं से टकराने की ताकत उनमें भी नहीं है। दूसरी महत्वपूर्ण बात ये थी कि वह गांव का पहला बच्चा था, जो नीची जाति से विद्यार्थी जीवन में भी प्रवेश करने वाला था। शिक्षक किस जाति से संबंध रखता है इसका भी कोई ब्यौरा नहीं दिया गया जो कहानीकार का शुरुआती कहानी होने के कारण क्षम्य है या अंडरस्टूड बात मान सकते हैं। लेखक शिक्षक और शिक्षा पर बहुत अहम सवाल खड़ा करते हैं कि शिक्षा भी सामाजिक वर्ण विभाजन, रीति- रिवाज, जाति भेद, लिंग भेद नहीं बदल पाई। लेकिन गुरू जी इस बात का आश्वासन देते हैं कि भविष्य में ये होगा। शिक्षा केवल सामाजिक कायाकल्प ही नहीं करेगी वह वैचारिक काया भी पलट देगी। गुरू जी एक शिक्षक होने के नाते सर्व मानवाधिकार सुखिया को देते हैं। कथा स्वतंत्र भारत की पृष्ठ भूमि में लिखी गई है इसीलिए बहुत सहजता से विद्यालय प्रवेश तो हो गया, परंतु उच्च जाति का भय अब भी गले की फांस बनी हुई है। गुरू जी अपने शिक्षक होने के कर्तव्य का भली-भांति पालन कर रहे हैं। सहयोगी के रूप में अपना योगादान, स्थिति और गलत परम्पराओं से बाहर निकलने की दिशा दे, सुखिया का मार्ग दर्शन ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज की गलत परम्पराओं से मुक्ति का प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं। वहीं कहानी को नया मोड़ देने के लिए लेखक ने सुखिया की वेशभूषा सफ़ेद कमीज़ को, जिसका जिक्र विषयवस्तु के आधार पर कहानी में पूर्व में भी होना चाहिए था, किन्तु नहीं हुआ। ऐसा लगता है जैसे कहानीकार को यकायक इसे लिखने की जरूरत पड़ी, ताकि कथा के उद्देश्य की पूर्ति हो सके। अंतिम भाग में डॉ.आंबेडकर के स्लोगन से चमकती दीवार शिक्षा की ताकत का महत्व बता रही है। "सुखिया देखो, अपने पीछे की इस भीत को देखो।

जब तुम पाठशाला आए थे, तब क्या ये भीत ऐसी ही थी?"
"नहीं।" 10 सुखिया ने पलटकर भीत को देखा जिस पर सफ़ेदी पुती थी, जिसने दिवारों और गिरे हुए लेवड़ो को ढक दिया था और उस पर मध्यम, मध्य में नीले रंग का अशोक चक्र बना था व नीचे बड़े बड़े सुंदर अक्षरों से महापुरूषों के कथन अंकित थे। सुखिया उस कथन को तो पढ़ नहीं पाया किंतु भीत को देखकर उसे अच्छा लगा।
"अब ये दीवार अच्छी दिख रही है न?"
"हां, गुरू जी।"
"देखो। चार अक्षर लिखने के बाद ये भीत भी बोलती हुई नज़र आ रही है। इसकी दरारें, इसकी जर्जरता सब इन अक्षरों के नीचे दब गई है न?"
"हां, गुरु जी।"
"बस यही बदलाव लाएगी। तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई। जिसने दीवार को जीवंत कर दिया वह एक दिन रीतियों, कुरीतियों, जाति, वर्ग और सामाजिक व्यवस्था की सभी दरारों को ढक देती। नीला रंग क्रांति का, धोला रंग शांति का। ये दोनों ही शिक्षा से संभव हो सकेंगे। समय के साथ बदलाव ज़रूर होंगे सुखिया, ज़रूर होंगे।" [11]

कहानी सफ़ेद और नीले रंग के व्यापक अर्थ को दृष्टिगत कराती है। बालमन को आंदोलित कर मुक्ति की आस, सपने जगा रही है। समस्या और समाधान दोनों ही कहानी में हैं। कहानी में तर्कसम्मत विवेचन, कहानीकार की विचारक, चिंतक छवि का बोध भी कहानी कराती है।

प्रगतिशील कहानी है, जो स्वस्थ मानसिकता वाले समाज की परिकल्पना लिए है। संवादों की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी कम है। कहानी पूर्णतः अधिकार चेतना, सामाजिक चेतना व समानता की बात करती है व गैर दलित जाति के इंसान के दलित समाज के सहयोग को स्थापित करती कथा है। कहानी संवाद, शैली वैविध्य, मौलिकता व आत्मीय स्वर लिए है। कहानी संवादों से आरंभ होकर भविष्य के उज्ज्वल सपने और नई सुबह जो नया प्रकाश फैलाएगी; पर अंत की गई है। कथावस्तु, गठन, वाक्य संरचना, व्यंग्य विनोद व सपाटबयानी कहानी की गुणवत्ता है। इसके लिए कहानीकार श्लाध्य योग्य हैं।

****

संदर्भ :-

1. हिन्दी कहानी एक नई दृष्टि - इंद्र मदान - पृष्ठ -35
2. समकालीन भारतीय साहित्य - पत्रिका मार्च, अप्रैल अंक -2021
3. हथौड़ा - 135
4. चमरवा रतनकुमार सांभरिया की प्रतिनिधि कहानियां,डॉ. लोकेश गुप्ता पृष्ठ - 44
5 - खेत और अन्य कहानियां संग्रह - रत्नकुमार सांभरिया - पेज - 90
6. एक कप चाय और तुम (कहानी संग्रह)- सुनील पंवार -73
7. एक कप चाय और तुम द्वितीय संस्करण - सुनील पंवार - 73
8. एक कप चाय और तुम - " - सुनील पंवार -74
9. एक कप चाय और तुम - " -सुनील पंवार - वही
10. एक कप चाय और तुम - (कहानी संग्रह) सुनील पंवार - 75

मैं द्रौपदी नहीं हूँ : नारी के अंत:करण की वेदना

डॉ प्रवीन कुमार
सहायक प्रोफेसर (हिंदी)
राजकीय महाविद्यालय सिधरावली,मो.9811401368

'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' डॉ. ज्ञानी देवी जी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इस कहानी-संग्राह में हमें ज्ञात होता है कि नारी की जीवनशैली में आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उसे आज भी पूर्वकालों की तरह दासी ही समझा जाता है। वैदिककाल में नारी की स्थिति उत्तम थी, परंतु जैसे-जैसे दास वर्ग का जन्म हुआ है, स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति में पतन आरंभ होता गया है। सेवा ही नारी का मुख्य कार्य बन गया, यद्यपि घर का सारा काम एवं व्यवस्था अभी भी स्त्री के हाथों में है, परंतु अपने मूल अधिकारों से वह अभी तक वंचित है।

सामंती समाज में स्त्री को तीन नाम दिए गए थे-पत्नी, रखैल, वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार नहीं करता है यथा-

...जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो वह उसे पत्नी कहता है लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है।"[1]

शेक्सपियर जैसे महान विद्वान ने कहा है-'नाम में क्या रखा है? लेकिन क्या आपने कभी किसी को अपनी बेटी या पोती का नाम द्रौपदी रखते हुए सुना है? सौता, रमा, लक्ष्मी, दुर्गा यहाँ तक की काली नाम की लड़की आपको मिलेगी, लेकिन द्रौपदी नहीं मिलेगी। शायद इसीलिए लेखिका ने अपने काव्य-संग्रह का नाम 'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' रखा है। कहानी संग्रह का शीर्षक ही इतना जिज्ञासावर्द्धक है कि पाठक अनायास ही इस कहानी संग्रह को पढ़ने के लिए खिंचा चला आता है। इस कहानी संग्रह के माध्यम से लेखिका उन सभी रूढ़िवादी परंपराओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए प्रयासरत है, जिन्होंने नारी-जीवन के विकास को अवरुद्ध किया है।

'मैं द्रौपदी नहीं हूँ' कहानी एक पहाड़ी लड़की की पीड़ा और विवशता को व्यक्त करती है, जिसका विवाह हरियाणा प्रदेश के कुरुक्षेत्र जनपद के एक अधेड़ व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। श्रेष्ठा नाम की यह सुंदर लड़की अपनी पीड़ा को एक चित्रकार के समक्ष व्यक्त करते हुए कहती है कि मैंने अपनी नियति समझकर अधेड़ उम्र के पति को स्वीकार कर लिया था, परंतु दूसरी रात मेरे कमरे में मेरे पति की जगह कोई दूसरा व्यक्ति आता है। मैं उसका विरोध करती हूँ तो वह कहता है-'... वह तुम्हारा पति किस-किस को जान से मारेगा। कल तुम्हारे पास तीसरा आएगा, परसो चौथा व नरसो पाँचवाँ...। वह अकेले थोड़े ही तुम्हारा पति है? फिर, हमें बाहर निकालने वाला यह कौन है? हम पाँचों ने तुम्हें मिलकर खरीदा है।....यह कुरुक्षेत्र की भूमि है, यहाँ द्रौपदी जैसी राजकुमारी के भी पाँच-पाँच पति थे, फिर तुम्हारी तो औकात क्या है?' [2]

इस तरह अगली प्रातः श्रेष्ठा वहाँ से भाग आती है। वह चित्रकार को आपबीती सुनाते हुए कहती है कि-- बाबूजी, आप ही बताइए, क्या द्रौपदी बार-बार जन्म लेती रहेगी? नहीं ना? मैंने उन्हें छोड़कर क्या बुरा किया बाबूजी? मैं द्रौपदी नहीं दनना चाहती थी।' [3]

'काश' नामक कहानी में भ्रूण हत्या की समस्या के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि नारी पर अत्याचार उसके जन्म लेने से पहले ही